कला
और बूढ़ा चाँद

कला और बूढ़ा चाँद

[रश्मिपदी काव्य]

श्री सुमित्रानंदन पंत

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली-६ पटना-६

सुहृद्वर
श्री भगवतीचरण वर्मा को
सस्नेह !

विज्ञापन

'कला और बूढा चॉद' मे मेरी सन् १६५८ की रचनाएँ सगृहीत है।

१८/बी ७, स्टैनली रोड,
इलाहाबाद
१५ दिसम्बर, '५६

—सुमित्रानंदन पत

रश्मि-व्यूह

ओ सृजन उन्मेष,

मन ने बहुत काट-छाँट की,······

कला शिल्प के हाथो से

भाव बोध के स्पर्शो से

सहस्रो नये वसत सँवारे !

अभी असख्य शरदों को

अपने अग

पावक मे नहला कर

रूप ग्रहण करना है !

बूढ़ा चाँद

बूढा चॉद
कला की गोरी बॉहो में
क्षण भर सोया है !

यह अमृत कला है
शोभा असि,
वह बूढा प्रहरी
प्रेम की ढाल !

हाथी दॉत की
स्वप्नों की मीनार
सुलभ नही,—
न सही !
ओ बाहरी
खोखली समते,
नाग दतों
विष दतो की खेती
मत उगा !

राख की ढेरी से ढँका
अगार सा
बूढा चॉद

कला के बिछोह में
म्लान था,
नये अधरो का अमृत पीकर
अमर हो गया !

पतझर की ठूँठी टहनी मे
कुहासों के नीड मे
कला की कृश बाँहो मे झूलता
पुराना चाँद ही
नूतन आशा
समग्र प्रकाश है !

वही कला,
राका शशि,—
वही बूढा चाँद,
छाया शशि है !

कला

ओ पारगामी
    गर्जन मौन
    शुभ्र ज्ञान घन,

अगम नील की चिन्ता मे
    मत घुल !

यह रूप कला ही
    प्रेम कला
अमरो का गवाक्ष है !—

उस पार की ज्योति से
तेरा अतर
दीपित कर देगी !
    तेरी आत्म रिक्तता
    अक्षय वैभव से
    भर जाएगी !

ओ शरद अभ्र,
तूने अपने मुक्त पखो से
आँसू का मुक्ता भार
आकाक्षा का गहरा

श्यामल रग
धरती पर बरसा कर
उसे हरी भरी कर दिया !

तेरा व्यथा धुला
नम्र मन
व्यापक प्रकाश वहन करेगा,
शाश्वत मुख का दर्पण बनेगा !

तेरे द्रवित हृदय मे
स्वर्ग
स्वप्नो का इद्रधनु नीड
बसाएगा !

शिव की कला ही
सत्य और सुदर है !

धेनुएँ

ओ रँभाती नदियो,
बेसुध
कहाँ भागी जाती हो ?
वंशी रव
तुम्हारे ही भीतर है !

ओ फेन गुच्छ
लहरो की पूँछ उठाए
दौडती नदियो,

इस पार उस पार भी देखो,—
जहाँ फूलो के कूल,
सुनहले धान के खेत है !
कल कल छल छल
अपनी हो विरह व्यथा
प्रीति कथा कहते
मत चली जाओ !

सागर ही तुम्हारा सत्य नही !
वह तो गतिमय स्रोत की तरह
गति हीन स्थिति भर है !
तुम्हारा सत्य तुम्हारे भीतर है !—

राशि का ही अनत
अनत नही,—
गुण का अनत
बूँद बूँद मे है !

ओ दूध धार टपकाती
शुभ्र प्रेरणा धेनुओ,
तुम जिस वत्स के लिए
व्याकुल हो
वह मै ही हूँ !

मुझे अपना धारोष्ण प्रकाश
अनामय अमृत पिलाओ !
अपनी शक्ति
अपना जव दो !

मुझे उस पार खडी
मानवता के लिए
सत्य का वोहित्थ
खेना है !

ओ तट सीमा मे बहने वाली
सीमा हीन स्रोतस्विनियो,
मै जल से ही
स्थल पर आया हूँ !

देह मान

उत्तर दिशा को
अकेले न जाना
लाडिली,
वहाँ
गधर्व किन्नर रहते है ।

चाँदनी की मोहित खोहो मे
ओसो के
दर्पण-से सरोवर है,
द्वार पर
झीने कुहासो के परदे पडे हैं ।
उत्तर दिशा मे
अपनी वीणा न ले जाना
बावरी,
वहाँ अप्सर रहते है ।
वे मन के तारो मे
ऐसे बोल छेडते है,—
देह लाज छूट जाती है ।
प्राणो की गुहाएँ
आनद निर्झरो से
गूँज उठती है !

उत्तर दिशा मे
ग्यारह तारो की
भाव वीणा न बजाना
मानिनी,
वहाँ इद्र रहते है ।

रक्त पद्म-से
हृदय पात्र मे
शची
स्वर्णिम मधु ढालती है,—
स्वप्नो के मद से
इद्रियो की नीद
उचट जाती है ।

वहाँ आलोक की भूलभुलैया में
अधकार
खो जाता है ।

उत्तर दिशा को
ज्ञान शिखर की
अनत चकाचौध में
देह मान लेकर
अकेले न जाना,
भामिनी,
वहाँ कोई नही,
कोई नही है ।

मधुछत्र

ओ ममाखियो,
यह सोने का मधु
कहाँ से लाई ?
वे किस पार के वन थे
सद्य खिले फूल ?

जिनकी पँखुड़ियाँ
अजलियों की तरह
अनत दान के लिए
खुली रहती है !

कितने स्रष्टा
स्वप्न द्रष्टा
चितवन तूली से
उनके रूप रग अकित कर लाए !

फूलो के हार
पुष्पो के स्तवक सँजोकर
उन्होने
कुम्हलाई हाटे लगाई !
रूप के प्यासे नयन
मधु नही चीन्ह सके !

ओ सोनें की माखी,
तुम गर्भ ही में पैठ गई,
स्वर्ग मे प्रवेश कर
हिमालय-से अचेत
शुभ्र मौन को
गुजित कर गईं !

उन माणिक पुष्पराग के
जलते कटोरो में
कैसा पावक रहा,
हीरक रश्मियों भरा ?—
जिसे दुह कर
तुम घट भर लाई !
कौन अरूप गध तुम्हे
कल का सदेश दे गई ?

ओ गीत सखी
ये बोलते पख मुझे भी दो,
जो गाते रहते हैं,—
और,
वह मधु की गहरी परख,—
मैं भी
मधुपायी उडान भरूँगा !

मानवता की रचना
तुम्हारे छत्ते-सी हो !
जिसमे स्वर्ग फूलो का मधु,
युवको के स्वप्न,

मानव हृदय की
करुणा ममता,—
मिट्टी की सौधी गध भरा
प्रेम का अमृत,
प्राणो का रस हो !

खोज

साँझ के धुँधलके मे
धीमी धीमी
टिनटिनाती घटियो की ध्वनि
किन अनजान चरागाहो से
आ रही है!

भेड़ो के झुड-सी
अवचेतन की
घाटियो मे छिपी
परपराओ को
सस्कार
अपने अभ्यास की
पैतृक लाठी से
हॉक रहे है!

धरती के जघनो के बीच
फैली
घाटियों के अग
कुम्हलाने लगे हैं!
नाभि-से गहरे
पोखर के जल मे
अँधियाला डूब रहा है!

शिखरो पर से
चीलो के पख खोल
अतिम सुनहली किरणे
आकाश की खोहो मे
सोने चली गई है !

चारो ओर
नैराश्य, सदेह
अवसाद का कुहासा
गहराने लगा है !

मन क्या खोज रहा है ?

इन क्षण दृश्यो के
बदलते रूपो मे
समग्रता, सगति
कहाँ है ?
वह तो तुम से
सयुक्त रहने में है !

अमृत क्षण

यह वन की आग है !
डाल डाल
पात पात
जल रहे है !
कोपले
चिनगियो-सी
चटक रही है !

शुभ्र हरी लपटे
लाल पीली लपटे
ऋतु शोभा को
चूमती चाटती
बढती जाती है
आनद सिन्धु
सुलग उठा है !

ओ वन की परियो,
गाओ !
यह अमरो का यौवन है !
अपने अगो से
धूपछाँह
खिसक जाने दो !
नए गध वसन बुनो,
नए पराग मे सनो !

प्रभात आ गया !
ओ वन पाखियो,
गाओ !
यह नया प्रकाश है !

वन लपटों से नए पख माँगो,
तुम मन के नभ मे उड सको,
मर्म मे बस सको,
हृदय छू सको !

अब नया आकाश ही
नीड हो,
उड़ान ही
स्वप्न शयन !

यह आग शोभा ही में
सीमित न रहेगी,
फागुन लाज ही मे
लिपटा न रहेगा !

साँसे आग न बरसाएँगी,
ओंठ ओठ न जलाएँगे !
अमृत पीते रहेगे हम,
नए पराग सूँघेगे !

यह मिट्टी ही
शाश्वत है,
असीम है,
चैतन्य है !

प्राणो के पुत्र हम,
स्वप्नो के रथ पर आएँगे,
रस की सताने,
अनत यौवन के गीत गाएँगे !

भावो का मधु पीएँगे,
मदिर लपटो का
प्रकाश सचय करेंगे,

हमने मृत क्षणो मे से
अमृत क्षण चुने है !

शरद शील

शरद आ गई !
श्वेत कृष्ण बलाको की
मदिर चितवन लिए,—
शरद छा गई !

स्वच्छ जल
नील नभ
उसी का कक्ष है !
काँसो की दूध फेन सेज पर
चदिरा सोई है !
गौर पद्म सरोवर
उठता गिरता
उसी का वक्ष है !

यह प्रिया की कल्पना है,
चद्रमुखी प्रिया की !
शोभा स्वप्न कक्ष में
देह भार मुक्त
शील उज्वल लौ
चदिरा की !

सरोवर जल में
रुपहरी आग है,—
राजहस
स्वप्नो के पख खोले है,—
तुम्हारी रूप तरी मे
प्राणो के शुभ्र पाल है,
नवले !

ओ युवक युवतियो,
स्वच्छ चाँदनी मे नहाओ,
नग्न गात्र, नग्न मन,—
आत्म दीप लिए,
मुक्त चाँदनी मे आओ !

नवीन देह बोध पाओ,—
रूप रेखाएँ देखो,
रूप सीमाएँ
पहचानो !

ए तटस्थ प्रेमियो,
रूप विरक्त मत होओ,
रस स्रोत मन मे है,
सौन्दर्य आनद
भीतर है,—
देह मे न खोजो !

देह लजाती है,
अपनी सीमा जानती है,
प्रेम विरत होता है
रज गध मे सन कर; —
उसका मदिर हृदय है !

काले मेघो के महल
ढह गए,
चपला की चमक
कामना की दमक
मिट गई , —

यह सामाजिकता का
प्रासाद है,
शरद शुभ्र
भाव गौर, —
मानवता का स्फटिक प्रागण !

ओ युवक युवतियो,
शील सौम्य
शरद शुभ्र
चरण धर आओ !

रिक्त मौन

मैंने
हिमालय के
शुभ्र श्वेत मौन को
फूंका,

मानस शख से
छोटा था वह ।

सूरज नें प्रकाश
चॉद ने चॉदनी लुटाई,
हिमालय की सतरग देह
मेरी छाया निकली ।

स्वर्ग शोभा
कनक गौर उभरे उरोजो को
पीन जघनो से सटाए
सोई थी,—
छेडकर देखा,
कामना तृप्ति से
बौनी थी ।

ऊषा आई, साँझ आई,
वैदिक ॠषि और नये कवि,—

हिमालय की
उलटी हथेली सी सीप
उस मोती से सूनी थी
जिसे प्रेम ने
हृदय को सौपा था !

सहज गति

तुम्हारी वेणी के प्रकाश नीड मे
मेरे स्वप्न चहकते है,—
ओ शुभ्र नीलिमे !

जब तक अधकार है
प्रकाश भी है !
तुम्हारे पथ की
बाधा है ज्ञान,—
सबसे बडा अज्ञान !
वैसे तुम चीन्ही हो,
चिर परिचित हो !

जव तक अधकार है
ज्ञान बधन बनता रहेगा,
ज्ञान का फल खाकर
मै अज्ञान मे डूब गया !
मन के
काले सुफेद
पख उग आए !

ड्योढी के भीतर
केवल शाति,
नि स्वर शांति,
नि सीम शाति है !

जिसका छोर पकडे
ज्ञान अज्ञान शून्य
मैं बढता जाता हूँ,
बढता जाता हूँ।

ओ अतरमयि,
तुम्हारा करुणा कर ही
ध्यान वन कर
गति हीन गति से
मुझे खीचता है।

अपने स्थान पर
मैं तुम्हे पाता हूँ।

दृष्टि

अमृत सरोवर मे
रति सागर मे डूब
मै पूर्ण हो गया ।

किसी बृहत् शतदल का
पराग है यह स्वर्ण धूलि,—
इसके कण कण में
मधु है ।

यह नील
अत स्पर्शी एकाग्र दृष्टि है,
जिसमें अनत सृजन स्वप्न
मचल रहे है !

तुम्हारी कामदेह शोभा
आदर्श है,
जिसमे शाश्वत बिम्बित है ।
रोम हर्ष
प्रकाश अकुर है,
जिनमे नवीन प्रभात उदित है !

वस्तु कभी वस्तु न थी,
तुम्ही थी ।—
भले दृष्टि न हो ।

तुम,—
जिसे प्रेम आनद
प्रकाश, शाति
वाणी नही दे पा रहे,
अनद शाश्वत
छू नही पा रहे ,—

तुम्ही हो,
भले दृष्टि न हो !

मुख

सिन्धु
मेरी हथेली मे समा जाते है,
उन्हे पी जाता हूँ मै,
जब प्यासा होता हूँ !

प्राणो की आग मे गल कर,
मै ही उन्हे भरता हूँ !
जब
सूख जाते है वे !

सोने के दर्पण सी दमकती...
प्राणो की आग,
जिसमे आनद
मुख देखता है !

मुख,—चूर्ण नील अलको घिरा,
अनिमेष, प्रेम दृष्टि भरा—
जो ज्ञान को हृदय देती है !
अधर, अग्नि रेख से लाल
तृप्ति चूमती है जिन्हे !

मेरा ही मन बनता है
वह मुख,—
जब मैं तुम्हे
स्मरण करता हूँ !

मेरा ही मन बनता है
वह सुख,—
जब मैं तुम्हे
वरण करता हूँ !

अनुभूति

मै सूर्य मे डूबा,
वह स्वच्छ सरोवर निकला,
रक्त कमल सा खिला !
मेरे अग अग
स्वर्ण शुभ्र हो उठे !

ओ हीर रश्मि
अत. सत्य,
ओ माणिक किरण
अतर्वास्तविकते,
बहिर्जीवन सीमाएँ
लाँघो,
अतिक्रम करो ,

तुम नित नवीन
अति आधुनिक हो,
ओ अत. प्रकाश,
पूर्व पश्चिम से परे
तुम मानव मिलन सूर्य हो !

ओ काल शिखर पर
रजत नील में स्थित
स्वच्छ मानस,
ओ अंतश्चेतन,
तुम नव उदय
नव हृदय हो!

मेरा इद्रिय बोध
तुममे डूब
स्वर्ण शुभ्र
निखर उठा!

मै तुम्हारा मधुप हूँ!
ओ मणि पद्म,
पावक कमल!

अज्ञात स्पर्श

शरद के
एकात शुभ्र प्रभात मे
हरसिगार के
सहस्रो झरते फूल
उस आनद सौन्दर्य का
आभास न दे सके

जो

तुम्हारे अज्ञात स्पर्श से
असख्य स्वर्गिक अनुभूतियों मे
मेरे भीतर
बरस पडता है !

प्रज्ञा

वन फूलो मे
मैने नए स्वप्न रँग दिए,
कल देखोगे !
कोकिल कठ मे
नयी झकार भर दी
कल सुनोगे !

ये तितलियो के पख
वन परियो को दे दो,
चेतने,
तुम्हारी शोभा
विदेह चाँदनी है,
अपना ही परिधान !

धरती अब
लट्टू सी घूमती है
तो क्या ?
हम बडे हो गए !

पर्वतो की बडी बडी उमगे
अँगूठे के बल खडी
शात, मौन, स्थिर है !

समतल दृष्टि
समूची पृथ्वी न देख पाई थी,—
ऊपर के प्रकाश से
समाधान हो गया !

अब पकस्थल पर भी चले
तो ऊपर की दृष्टि
डूबने न देगी !

प्रेम

मैने
गुलाब की
मौन शोभा को देखा !

उससे विनती की
तुम अपनी
अनिमेष सुषमा की
शुभ्र गहराइयो का रहस्य
मेरे मन की आँखो मे
खोलो !

मै अवाक् रह गया !
वह सजीव प्रेम था !

मैने सूँघा,
वह उन्मुक्त प्रेम था !
मेरा हृदय
असीम माधुर्य से भर गया !

मैने
गुलाब को
ओठो से लगाया !
उसका सौकुमार्य
शुभ्र अशरीरी प्रेम था !

मै गुलाब की
अक्षय शोभा को
निहारता रह गया !

यज्ञ

यह ज्योति दुग्ध है,
शुभ्र, तैल धारवत्,
जो शील है,
अमृत !

ओ मुग्धाओ,
ओ शोभाओ,
अपना तारुण्य अर्पित करो
रचना मगल को !

यह मानवता का यज्ञ है,
मानव प्रेम का यज्ञ !
तुम्हारे कोमल अग
समिधा हो !
लावण्य घृत हो,
प्रेम,—प्रेरणा,
मत्र !

रस यज्ञ है यह !
नील विहग
रक्त किसलय
स्वर्ण हस
फूल निर्झर—

सब आहुति हो,
पूर्णाहुति !
छाया जल जाय,
नारी शेष रहे !

मानस यज्ञ यह,
भाव यज्ञ !
श्रद्धा, आस्था
लौ उठे !
मन का मानव जगे !
स्वर्ण चेतन
अमृत पुरुष,
रस मनुष्य !

वह प्रकाशो का प्रकाश है,
स्वर्ग रश्मि,
भू प्रदीप !

ओ छायाओ,
मायाओ,
ओ कायाओ,
आहुति बनो,
पूर्णाहुति !

अंतर्मानस

आ, यह माणिक सरोवर,
रजत हरित, अमृत जल
अरुण सरोवर !

नव सूर्योदय हुआ,—
अत तृष्णाओ के
रेशमी कुहासे
छँट गए,
देह लाज मान
मिट गए !

आ', यह उज्ज्वल लावण्य,
रस शुभ्र जल !
ज्ञान ध्यान डूब गए,
श्रद्धा विश्वास
उतने स्वच्छ न निकले !
समाधि ? निष्क्रिय,—
तन्मयता प्रेम मूढ थी !

यह माणिक मदिर आलोक
नव जागरण निकला !

देह अधकार न थी,
अत सुख का पात्र बन गई,
इद्रियाँ क्षणिक न थी
नया बोध द्वार बन गई,
जीवन मृत्यु न था
नयी शोभा, नयी क्षमता बन गया !

आकाश फालसई,
धरती मणि पद्म को घेर
हरित स्वर्ण हो उठी !

हृदय का अनत यौवन,
प्राणो की स्वच्छ आग निकला—
यह रत्न ज्वाल सरोवर !

प्रतीक्षा

नया चाँद निकल आया है
अतल गहराइयो से,
समुद्र से भी अतल गहराइयों से !
स्वप्न तरी पर बैठा
स्फटिक ज्वाल,
लहरो की रुपहली लपटो से घिरा !

रात की गहराइयाँ
सूरज को निगल जाती हैं;
तभी,
चाँद बन आई
तुम्हारी स्मृति !

सभी रत्न नही भाते,
विष वारुणी
स्फटिक, प्रवाल
सर्प, शख,—
अमृत स्रोतस्विनी के तट पर
बिखरी पडी सृष्टि !

चाँद भी—
कलक न सही,—
उपचेतन गहराइयो का ही
प्रकाश है !
प्यास नही बुझा पाता !
अचेतन को
नही पिघला पाता !

मन के मौन शृगो पर
सुनहले क्षितिज
नव सूर्योदय की प्रतीक्षा मे है !

शुभ्र
अवाक्
आत्मोदय की !

गीत खग

ओ अवाक् शिखरो,
भू के वक्ष-से उभरे,
प्रकाश मे कसे,—
दृष्टि तीरो-से तने,—
हृदय मत बेधो,
मर्म मत छेदो !

कौन रहश्चद्र था
क्षितिज पर,
कैसा तमिस्त्र सागर ?
कब का उद्दाम ज्वार !

धरती के उपचेतन से
उन्मत्त हिल्लोले उठ
अँगूठे के बल
खडी की खडी रह गई !

नील गहराइयो मे डूबी
मन की
अवाक् ऊँचाइयो पर
शुभ्र चापे सुन पडती है !

फालसई सोपानो पर
ललछौहे पग धर
उषाएँ उतरती है !

ओ स्वर्ण हरित छायाओ,
इन सूक्ष्म चेतना सूत्रो में
मुझे मत बाँधो !
मैं गीत खग हूँ,
उडता हूँ,—
ज्योति जाल में
नही फँसूँगा !

ऊँचाइयो को
समतल मे बिछा,
गहराइयो को
समजल मे डुबा,
इद्रधनुषी तिनको का
नीड़ बसा
कलरव बरसाऊँगा,—

नील हरी छाँहों में छिप
स्वप्नो के पख खोल
धरती को सेऊँगा !

अयुगल

ओ शाश्वत दपति,
तुम्हारा असीम,
अक्षय
परस्पर का प्यार ही
मेरा
आनद
मंगल
और
चेतना का आलोक है !

पट परिवर्तन

किरणो की
सुनहली आभा मे
लिपटा नील
तुम्हारा उत्तराग
और
तरगित सागर
मुक्ताफेन जडी
हरी रेशमी साडी पहने
तुम्हारी
कटि तक डूबी
आधी देह है!

किसे ज्ञात था,
पलक मारते ही
ओस के धुएँ के
बादल-सा
यह ससार
आँखो से ओझल हो जाएगा!
अतर मे
तुम्ही
शेष रह जाओगी!

ओ विराट् चैतन्य
यह मै क्या देखता हूँ

कि घर बाग पेड़
और मनुष्य
किसी अदृश्य पट मे
चित्रित भर है।
ये वास्तविक सत्य नही,
मोम के पुतले भर है।

रथवान
अश्व को चाबुक मारता है,
वह तुम्हारी ही
पीठ पर पड़ रहा है।
और तुम
खिलखिलाकर
भीतर
हँस रहे हो।

ओ अद्वितीय,
अतुलनीय,
मै आश्चर्य मे डूबा
अवाक्
तुम्ही मे डूबा हूँ।

पारदर्शी

ओ दुग्ध श्वेत
माखन पर्वत के सूर्य,
ओ श्वेत कमलो के वन,
प्राणो के सुनहले जल,—
तुम्हारे सूक्ष्म कोमल
उरोज मासल प्रकाश ने
मुझे घेर लिया !

तुम्हारी आभा
गुह्य सौरभ है—
जिसने मेरी इद्रियों को
लपेट लिया !
तुम्हारे अनत यौवन की सुरा पी
मेरा मन
तीनो अवस्थाओ के परे
जाग उठा !

मेरी कामना की आग में
डूब कर
तुम चॉद बन गए हो !

और
निशाओ के
उभरे नील उरोजों से
भ्रमर-से चिपक गए हो !

मैने तुम्हारे लिए
स्वप्नों का मौन
मधु कुज बनाया है,—
ओ विद्युत् अनल,
तुम प्रीति सौम्य बनकर
मानवीय रूप ग्रहण करो !

तुम मानव के
अंतर मे छिपे प्रकाश के
माध्यम बन सको,
वह अधिक चेतन
अधिक पारदर्शी है !

अमृत

मै सूर्य की किरणे डूहूँ
तुम चाँद की !
मै तुम्हे प्रकाश दूँ
तुम प्यार !

मै उच्च पर्वत शिखरों से
बोलूँ—
जहाँ पौ फटने के पहिले
फालसई नीलिमाओ के कुज मे
उषा की सलज लालिमा में लिपटी
श्वेत कमल कली सी
शांति, मौन सोई है !

तुम सागर की गहराइयो से गाना,
जहाँ फेनो के मोती उगलती
लहरो पर
रुपहली चद्र ज्वाल तरी का
मोहित गवाक्ष खोले
रत्नो की सतरंग छाया मे लिपटी

स्वप्न पख
भावना अप्सरी रहती है,
अनिमेष शोभा मे जगी !

समुद्र तल मे अनेक रत्न है,
जिनके मूल रग
और आदि ज्योति
ऊपर की अमलताओ मे—
हीरक झरनो के सूतो सी
दमकती
सूर्य किरणो मे है !

चद्रमा का
शुभ्र पीत पावक भी
सूर्य प्रकाश का ही
नवनीत है !

सूर्य चद्र
सत्य ही के वत्स है—
शाति और शोभा
श्रद्धा और भक्ति
उसी की धेनुएँ है !
ये किरणे भी
कामधेनु है,—
जिनके स्तनो से
धारोष्ण प्रकाश
मधुशीत अमृत
बहता है !

ओ आनद,
प्रेम सत्य ही का दुग्ध है,
जिसे पीकर
सूर्य चद्र पलते है।
वही
प्रकाश और अमृत है।

कोंपले

आज कोई काम नही,—
सोने के तार सा खिचा
प्यारा दिन है !

कल—
गुलाबो मे
काट छॉट की थी,

तब से
आँखो के सामने
नयी नयी कोपले
फूट रही है !—
ललछौही कोपले
स्वप्न भरी
रतनार चितवन सी,
शुभ्र पीत चिनगियो सी,—
लपटो के पग धर
नयी पीढी बढ रही है !
ज्यो ही आँखे मूँदता हूँ
कोपले केवल कोपले, .
रेशमी मूँगी कोपले,
रुपहले सुनहले इगितो सी
बरस पडती है !

ओ सृजन उन्मेष,
मन ने बहुत काट छाँट की,
पुराने ठूँठ उखाडे,
रद्दी जडे खोदी,
भद्दी डालियाँ
काटी तरासी,—

इधर उधर
कला शिल्प के हाथो से
भाव बोध के स्पर्शो से
सहस्रो नये वसत सँवारे ।

अभी असख्य शरदो को
अपने अग
पावक में नहला कर
रूप ग्रहण करना है ।

आज मुझे
नये स्वप्न
नये जागरण
नये चैतन्य की कोपले
दिखाई देती है ।
सर्वत्र
कोपले ही कोपले
आँखो के सामने
भाव भरा मुख
स्वप्न भरी चितवन
खोल रही है ।

प्रबोध

यह गौर मास सरोवर
जिसमे मै कूद गया हूँ !
इसमे स्वर्ण हस है,
शुभ्र अरुण कमल !

ओ शोभा पावक के कुड,
तुम कितने शीतल हो !
तुम्हारा अमृत पीकर
मेरे तन मन प्राण तृप्त हो गए—
मधुर अमृत पीकर !

उन्मत्त भावना हिलोरे
मुझे घेरे हुए है,
मै तन्मय,
उनके इच्छाकुल आलिगन मे
बँध गया हूँ,—
फूल मालाओं की लहरो के
आनद पाश मे !

स्वप्नों की गहराइयाँ
मुझे अपनी ओर खीचती है !—
इन अतलताओ का सुख
मन को मूर्छित कर देता है !

ओ अनाम सौरभ
अश्रुत सगीत
अनुपम सौन्दर्य के देश,

इस नीरव शाति के
अतल सिन्धु से
मै सर्वांग पूर्ण होकर
निकलूँगा !
सपूर्ण होकर !

मुझे
नील कुहासे मे खोई
धरती पर चलना है ! —
हरे अँधेरे मे लिपटी
धरती पर !

पादपीठ

तुम
किरणो के मुक्ताभ प्यालो मे
सुनहली हाला लाई हो !—
मेरा हृदय
शुभ्र पद्म सा खिल उठा है !
उसमे चद्रकला ने
अत प्रेम का
रुपहला नीड वना लिया है !
पिघली आग सी हाला
नही पीएगी
वह, अमृत पीती है !

ओ सुनहली किरणो,
तुम्हारा स्वागत करता हूँ,
तुम ज्ञान नील गवाक्ष से
मुझ पर वरसती रहो !

यह हीर रश्मि
चद्रकला
परात्पर ज्योति है !
उसे मेरी
अतर रचना करने दो,
वह अनन्य प्रेयसी है !

तुम
अपने वैश्व ऐश्वर्य से
मेरे तन मन सँवारो,—

तुम्हारे स्वर्णिम पखो पर
मैं अनत शोभाओ के
नि सीम प्रसारो मे विचरण करूँ !
नव प्रभात का दूत बन सकूँ !

यह शुभ्र चद्रकला
रजत पावक का कुड है !
अचेतन काले सिन्धु मे
इसकी असख्य लपटे
कूद पडी है !

प्रेम, आनद और रस का रूप
बदल गया है !

हृदय
शाति की स्वच्छ अतलताओ मे
लीन होता जा रहा है !
विश्व कहाँ खो गया है !
देश काल ? जन्म मरण ?

ओ चद्रकले,
केवल अमृतत्व ही अमृतत्व
अनिर्वचनीय
अस्तित्व ही अस्तित्व
शेष है !
मेरी पाद पीठ
अधकार है,
जहाँ तुझे
खडा रहना है ।

भाव रूप

अप्सराएँ ! —
हिम कलशो पर
साँझ प्रात
मूँगी लाली,—
सात लपटो वाली
इद्रधनुष छाया,—

हेम गौर
स्वप्न चरण चाँदनी की
रूप हीन शोभा,—
तितली, जुगनूँ
हिलोर,—
ओस,
अप्सराएँ !

लीला, लावण्य,
तनिमा,—
अजान चितवन
निश्छल भगिमा,
अदृश्य रोमाच ,—

आशा, लज्जा,
सज्जा ,—
अप्सराएँ !

ओ सुर सुंदरियो,
सुर वालाओ,
इस रूप ज्वाला की देह को
प्राणो की धूपछाँह मे
नहलाओ,
डुबाओ,—
यह धरती की हँसमुख सहेली,
उसका सौंधा पराग है !

हसो की पीठ पर
कमलो का कनक मरद
विखरा है,
सीप की हथेली मे
सुनहला मोती हँस रहा,
लहरो के धडकते वक्ष स्थल पर
रुपहले अगार सा
चाँद ऊब डूव कर रहा है !

ओ भाव देही

अनत यौवनाओ,
यह मृणाल ततु है,
पागल आशा का सेतु !—
इसी से आओ जाओ !

अभी मानव चेतना मे
किरणो का तोरण
नही खुला,—
जिससे स्वर्ग सुषमा
अगुठित
अभिसार कर सके !

विकास

नीली नीहारिकाएँ
शिखरो की है,
हरीतिमाएँ
घाटियो की ! —

जिनके आर पार
रश्मि छाया सेतु बाँध
तुम आती जाती हो !

अत. सौरभ से खिच
भौरो की भीड
तुम्हे घेरे
गूँजती रहती है !

और
ये सदियो के खडहर है !
जहाँ देह मन प्राण
बासी अधकार की सडाँध मे
दिवाधो-से
औधे मुँह लटके है !

झिल्लियो की सेना
अतर पुकार को रौद
चीत्कार भरती है !

एक दिन मे
मीनारे मेहराबे
कैसे उग आएँगी ?—
कि रश्मि रेखाओ से
दीपित की जा सके !
है ऐसे विद्युद्दीप
मन का अधकार
मिटा सके ?

ओ विज्ञान,
देह भले ही
वायुयान मे उडे,
मन अभी
ठेले, वैलगाडी पर ही
धक्के खाता है !

हाय री, रूढिप्रिय
जडते,
तेरी पशुओ की सी
साशक, त्रस्त चितवन देख
दया आती है !

वर्जनाएँ

तुम स्वर्ण हरित अधकार मे
लपेट कर
कई रेगने वाली
इच्छाएँ ले आते हो,
जिन की रीढ
उठ नही सकती !

इनका क्या होगा
मै नही जानता !
पिटारी खोलते ही
टेढे मेढे सॉपो सी
ये
धरती भर मे
फैल जाती हैं !
कौन शक्ति इन्हे बाँधेगी ?
कौन कला समझाएगी,
कौन शोभा अलकृत करेगी ?
ये मधु-तिक्त ज्वलित-शीत
वर्जनाएँ है !—
जो अब मुक्त हो रही है !

तुम्हारी सुनहली अलकों की
ये फूल माल बनेगी,
इनकी मादन गध पीकर
मृत्यु जी उठेगी !

तुम स्वर्ण हरित अधकार में
लपेट कर
अमृत के स्रोत
ले आये थे,

जो हृदय शिराएँ बन
समस्त अस्तित्व मे
नवीन रक्त
सचार कर रही है !

घर

समुद्र की
सीत्कार भरती
आसुरी आँधियो के बीच
वज्र की चट्टान पर
सीना ताने
यह किसका घर है ?
सुदूर दीप स्तभ से
ज्योति प्रपात बरसाता हुआ ! ..
या जलपोत है ?

नाथुनो से फेन उगलती
अजगर तरगे
सहस्र फन फैलाए
इसे चारो ओर घेरे
फूत्कार कर रही है !
उनकी नाडियो मे
लालसा का कालकूट
दौड रहा है !

वे अतृप्ति की
ऐठती रस्सियो सी
इसे कसे है !

इस निर्जन
स्फटिक स्वच्छ मदिर के
मुक्ताभ कक्ष मे
कल रात चाँद
चाँदनी के सँग
सोया था !
किरणो की बाँहो मे
चदिरा की
अनावृत ज्वाला को
लिपटाए !

तव
लहरों के फेनिल फनो में
स्वप्नो की मणियाँ
दमक रही थी !

सबेरे
इसी मदिर के अजिर मे
अरुणोदय हुआ !
रक्त मदिरा पिए !

रात और प्रभात
पाहुन भर थे !—
यह धरती का घर है,—
(आकाश मदिर नही !)
हरिताभ शांति मे
निमज्जित !

सिन्धु तरगे
पक सनी टॉगो से बहती
धरा योनि की दुर्गंध
धो धोकर
कड़ुवाती
मुँह बिचकाती,
पछाड खाती रहती है।

यह धरती पुत्र
किसान का घर है,—
द्वार पर
पीतल के चमचमाते
जल भरे कलस लिये,
सिर पर आँचल दिये,
युवती बहू खडी है,—
अनत यौवना
बहू।

दंतकथा

पुरानी ही दुनिया अच्छी
पुरानी ही दुनिया !

नदी मे कमल बह रहे—
कहाँ से आ रहे ?

किनारे किनारे
स्रोत की ओर
जाते…जाते ' देखा,

नदी के बीच
रगीन भँवर पडा है ,—
उसी से फुहार की तरह
कमल बरस रहे है !

हाय रे, गोरी की नाभि-से भँवर !
पास जाते ही
भँवर ने लील लिया !—
वह परियों के महल का
द्वार था !

परियाँ खिलखिला कर
हँसी !—
भौहो के संकेत से कहा,
राजकुमारी से व्याह करो !

परियो की राजकुमारी
नत चितवन
मुसकुरा दी !
उसके जूड़े मे
वैसा ही कमल था !

पुरानी ही दुनिया अच्छी ,
पुरानी ही दुनिया !

वह सीधा था,
हृदय मे दया थी !
झाड़ फूस की कुटी,—
भगवान परीक्षा लेने आए !
भस्म रमाए, झोली लटकाए ,—
उन्होने हाथ फैलाए
भीख माँगी !
मुट्ठी भर अन्न पाकर
चुपके ,
वरदान दे गए ! ..
झाड पात की कुटी
सोने का महल बन गई !
द्वारपाल चँवर डुला रहे है.—

बुढिया ब्राह्मणी
नवयुवती बन गई ,
शची सा शृगार किए है !

पुरानी ही दुनिया अच्छी,
पुरानी ही दुनिया !

एक थी स्त्री, एक था पुरुष,
दोनो प्रेम डोर मे बँधे ,
सच्चे प्रेमी प्रेमिका थे !
मदिर के अजिर मे पडे रहते ,
देवी का प्रसाद पाते !

दोनो एक साथ मरे !—
मर कर
हरे भरे लबे
पेड बन गए !

अब
दोनो धूपछाँह मे
आँखमिचौनी खेलते ,
दिन भर पत्तो के ओठ हिला
गुपचुप
बाते करते !

वसत मे कोयल पूछती ,
कूहू, कूहू ,
कौन है, कौन है ?

बरसात में
पपीहा उत्तर देता,
पिऊ पिऊ,
प्रिय हूँ, प्रिय हूँ !

पुरानी ही दुनिया अच्छी,
सच,
पुरानी ही दुनिया !

बिम्ब

तुम रति की भौ हो
कि काम का धनु खड ?
ओ चॉद,
यह रेशमी आशा बध
तुम्ही ने बुना !
जिसमे
किरणो के असख्य रग
उभर आए है !

ओ प्यार के टूटे दर्पण,
तुम्हारा खड खड पूर्ण है !
जिसमे अपूर्ण भी
सपूर्ण दिखाई देता है ।
यह कौन सी आग है
माखन सी कोमल,
स्तन सी मासल !
इसमे जलना ही
सोना बनना है !

विरह का गरल
अमृत बन
कब का शिव हो गया,—
तुम्हारा शशि सा पद नख
भाल पर धारण कर !

लाल फूलों की लौ—
मेरी लालसा—
जीभ चटकारती है !
निर्जन मे लेटी चाँदनी
तुम्हारी ओर ताकती है !
तुम्हारी सात्विक सुधा
प्राणो की समस्त ज्वाला
पी लेती है !

ओ अमृत घट,
ज्ञान के निःसीम नील मे
सुनहले आशा के बध के भीतर
तुम्ही हो,—
प्यास की अनत लहरियो में
रुपहली नाव खेने वाले
आत्म मग्न
तुम्ही हो !—
मै नही !

इंद्रिय प्रमाण

शरद के
रजत नील अचल मे
पीले गुलाबो का
सूर्यास्त
कुम्हला न जाय,—
वायु स्तब्ध .
विहग मौन ! . .

सूक्ष्म कनक परागो से
आदिम स्मृति सी
गूढ गध
अंतर मे समा गई !

जिस सूर्य मडल में
प्रकाश
कभी अस्त नही होता,
उसकी यह
कैसी करुण अनुभूति,—
लीला अनुभव !

नयी नींव

ओ आत्म व्यथा के गायक,
विश्व वेदना के पहाड को
तिल की ओट कर,

अपने क्षुद्र तिल-से दुख का
पहाड बनाकर
विश्व हृदय पर
रखना चाहते हो ?

अहता मे पथराई
निजत्व की दीवार तोड़ो,
यह वज्र कपाट
तुम्हे बदी बनाए है !

आत्म मोह के
इस घने अँधियाले
वन के पार
नये अरुणोदय के
क्षितिज खुले है !
जहाँ
ममता अहता और
आत्मरति के कृमियो को
पैरो तले रौदते—कुचलते

असख्य चरण
श्रम स्वेद के पक मे सने—
निरतर
आगे बढ़ रहे है !

ओ निजत्व के वादक,
इस अरण्य रोदन से लाभ ?
अपने पर
आँसू मत बहाओ !

अरण्य और सत्य के बीच
शाति धैर्य और निष्ठा की
दुर्भेद्य मेखला है,—

जिसके पार
तेरा रिक्त रुदन
नही पहुँचेगा !

वहाँ,
अपने सुख दुख भूलकर
प्रबुद्ध मानवता
सुनहले अतरिक्षो में
नवीन
भू रचना की नीव
डाल रही है !

मूर्धन्य

ओ इस्पात के सत्य,
मनुष्य की नाडियो मे बह,
उसके पैरों तले बिछ,—
लोहे की टोपी बन
उसके सिर पर मत चढ़ !

सिर पर
फूलो का ही मुकुट
शोभा देता है !

स्वप्नो से घर की नीव
पड़ सकती है,
इस्पात
गला कर
नही पिया जा सकता !
फूल ही पात्र है
जिनसे मधु पिया जाता है !

मै ही हूँ वह मधु
जिसे प्रकृति ने
असख्य फूलों से चुना है !
जिसमे सभी आकाशों का
सुनहरा मरद है !

ओ इस्पात के तथ्य
मै तेरा जूता पहन
दृढ सकल्प के चरण
बढाऊँगा,—

पर तुझे
मूर्धन्य स्थान
नही दे सकता !
तू साधन रह,
साध्य न बन !

एकाग्रता

तुम्हारी पवित्रता
अनिर्वचनीय है,—
जिसकी अवाक् गहराइयों की
शुभ्र सीप में
सत्य—
मुक्ताभ सत्य
पलता है !

ओ प्रेम की प्रगाढते,
जो अपनी तन्मयता मे
मूक है !
ओ निष्ठा की तीव्रते,
जो अपनी एकाग्रता मे
आत्म विस्मृत है !—

इन अतल गहराइयो को
कैसे समतल बनाऊँ ?
इन अलघ्य ऊँचाइयो को
कैसे समस्थल पर लाऊँ !

कि
बाहर भीतर
तुम्ही को देखूँ—
तुम्हारी ही सन्निधि मे रहूँ,—
तुम्ही में
समाऊँ !

धर्मदान

यह प्रकाश है,
तुम इसमे क्या खोजोगे,
क्या पाओगे ?—
यह दीप
तुम्हे सौपता हूँ !

यह अग्नि है,
तुम किन आनदो के
यज्ञ करोगे,
किन कामनाओ की
हवि दोगे ?—
यह वेदी
तुम्हे सौपता हूँ !

यह प्रकाश और अग्नि ही नही,
गति है, जीवन है,
तुम किन लोको में
जा पाओगे ?—
यह किरण
तुम्हे सौपता हूँ !

यह अग्नि

अतर अनुभूति है,

तुम सत्य के स्रोत को

देख पाओगे कि नही ?

यह अभीप्सा

यह प्रेरणा

तुम्हे सौपता हूँ ।

सान्निध्य

तुम्हारी शोभा देख
फूलो की आँखे
अपलक रह गई !

तुम फूलो की फूल हो,
माखन सी कोमल ! —
तुम्हारे शुभ्र वक्ष मे
मुँह छिपाकर
मै
ध्यान की
तन्मय अतलताओ में
डूब जाता हूँ !

ओ कभी न खोजाने वाली,
मेरे इद्रिय द्वारो से
तुम्हारे आनद का
अति प्रवाह
दिगतो के उस पार
टकराता रहता है !

मेरी शाति
तुम्हारे
केन्द्र वृंत पर
कभी न कुम्हलाने वाले
अस्तित्व की तरह
खिली है !

चाँद

चाँद ?
मैं उसे अवश्य पकड़ूँगा !
प्रेम के पिजडे मे पालूँगा,
हृदय की डाल पर सुलाऊँगा,—
प्यार की पँखुडी
चाह की अँखडी
चाँद—
उससे
स्वप्नो का नीड सजाऊँगा !
तुम्हारा ही तो मुकुर है !

फूल के मुख पर
तितली सा बैठकर
वह सतरगे पर फैलाएगा !
मै उसे
इद्रधनु की झूल मे झुलाऊँगा,
प्यार का माखन खिलाऊँगा !
तुम्हारा ही तो मुख है !

चाँद ?
मै उसे निश्चय चखूँगा,
फूल की हथेली पर रखूँगा,—

तुम्हारा तो प्रकाश है !
भावो से सजोऊँगा,
आँसू से धोऊँगा !
तुम्हारी तो शोभा है !

पत्तो के अतराल से
अलको के जाल से
मै चाँद को
अवश्य पकड़ूँगा !

दृष्टि नीलिमा मे,
रूप चाँदनी मे बखेरूँगा,
तुम्हारा तो बोध है !

भाव पथ

शपथ !—
अशुभ न करूँगा,
असुदर न वरूँगा,
तुम मुरझा जाती हो !

ओ भावना सखी,
तुमने मुझ पर
सर्वस्व
वार दिया !—
मैं दूसरो पर निछावर हो सकूँ !
प्रीति चेतने,
जीवन सौन्दर्य
तुम्हारी छाया है !
बिना स्पर्श
निर्जीव, निष्प्राण
हो उठता !

रिक्त गुठन है
स्त्री की शोभा,
रूप का झाग !
मै उससे न बोलूँगा,
न छूऊँगा,—
वह देह बोध ही बनी रही तो !

पथ रोध है
देह बोध,
भूत बाधा !

ओ प्राण सखी,
स्वप्न सखी,
तुम्हारा लावण्य,—
अमृत निर्झर
उतरता है
चद्र किरण
रथ से !
बिना छुए
रोमाच हो उठता,
बिना बोले
मन समझ लेता है !

अदृश्य स्थल है यह,
गुह्य कुज,
गध वन,—
जहाँ मिलते है हम !

शाश्वत वसत
अनत तारुण्य
अनिन्द्य सौन्दर्य…
पहरा देते है यहाँ !

प्रकाश

सुनहली
धान की बाली सी
दीप शिखाएँ
अँधियाली के वृंत पर काँपती,—
क्या जाने ?

हीरक सकोरो मे
आलोक छटाएँ
स्वप्न शीश
इद्रधनुष सी सुलगी—
उनकी गूढ कथा है !

जिसने सूर्य ही का मुख ताका
इन्हे न पहचानेगा !
इनका प्रकाश
उस अँधेरे को हरता है
जिसे सूरज नही हरता !

कितने ही प्रकाश हैं !—
दूध के झाग सा
रूई के सूत सा
उजियाला
सब से साधारण !

मन की स्नेह ज्योति
अँधेरे को बिना मिटाए
सोना बनाती है,—
वह भी प्रकाश है !

अधकार के पार
प्रकाश के हृदय मे
जो लौ जलती है,—
अनिमेष,
ध्यान मौन,—
वह बिना देखे
सब कुछ समझती है !

कालातीत

ये नीरव नीलिमा घाटियाँ
स्वप्नो की हैं !
जहाँ शोभा चलती है
अशरीरी !—
आनद निर्झरी सी
हीरक रव !

यहाँ शाति की
स्वच्छ सरसी मे
प्रीति नहाती है,
सुनहला परिधान खिसका
मुक्ति में डूबी !

असीम का स्वभाव,—
वह शोभा की
नयन नीलिमा मे बँधा
असीम ही रहता !—
सरसी मे सोया भी !
अनिमेष दृष्टि का अवाक् क्षण
शाश्वत अनुभूति है !

ये नीलिमा घाटियाँ है
कालातीत——
जहाँ अशरीरी शोभा
रहती,
दृष्टि परिधान हटा
आत्म मग्न,
ज्योति नग्न !

अंतःस्थित

मुझे ज्ञात है,
तुम
जो नवीन दिगतो मे
स्वर्णिम प्रभात हो,
तुम्ही
मेरे मानस मे
शुभ्र पद्म कली बन
खिली हो।

मेरी
हृदय की दृष्टि
तुम्हे अपलक
निहारती रहे।

वह-मैं

जीवन है,
तन है, मन है,
इनसे भी गहरा है
एक-है,
हीरक-है,
रश्मि-है !

देह,
व्यक्ति,
समाज,—
इन वस्त्रो को उतारो,
मेरे स्वप्न कक्ष मे
अपने को सँवारो !
तुम्हे नग्न देखना चाहता हूँ,—
शब्दो से
भावो से
सूक्ष्म है
वह-है !

शुभ्र, शुद्ध,
अच्छिन्न अविद्ध,—
अपने को नए रूप से निखारो,
अपने को अपने मे निहारो,—
हृदय कक्ष मे है
वह दर्पण !

शतियो मे लिपटी हो,
धूलि मे, गध मे,
रूप में, छद में,—

इतिहास
दर्शन
विज्ञान,—

इनसे परे हो तुम,
परे हूँ मै
तुम और मै !—
काल शून्य है
वह-है,
वह-तुम,
वह-मैं !

जीवन बोध

इन इंद्रनील आरोहो पर
अविराम बजनेवाली
रूपहली घटियो के नीरव स्वर
यदि न सुनाई पडते हो,

दुग्ध फेन भापो में छिपी
अमृत स्रोतो सी सरकती
चाँद की किरणे
न दिखाई देती हो,—

इन नीहार-नील ऊँचाइयो मे खोए
अदृश्य शिखरो पर
मुक्ताभ सोपानो से उतरती अप्सरियाँ
यदि मध्यवर्ती छाया पथ मे
रुक जाती हो—

विद्युत् पख विहग
ज्योति की रक्ताभ खोहो में
खो जाते हों—
और
रूई के झाग-से मेमने
उन अवाक् नीलिमाओ मे
न चढ पाते हों,—

तो,

मैं अपने श्रद्धा मौन गीतो को
ध्यान पथ से
वहाँ भेजूँगा !
उनके अभीप्सा के पख,
उन्हे अवश्य छू पाएँगे !

वहाँ शुभ्र ऊँची वायुएँ
इद्रधनुष पालनो मे
सहस्रो नयी उगी
शशि कलाओ को
झुलाती है,—

वहाँ अज्ञात गध
घ्राणेन्द्रिय को मूर्छित कर
माणिक सुरा सी
प्राणो मे भर जाती है—

मोतियो के झरनो मे लटके
अनेक स्वप्न दूत
सीप के मुक्ता स्मित पख फैलाए
नि.स्वर उच्छ्रायो मे
मँडराते है,—

मै, उन आरोहो को
प्राणो की हरी गहराइयो मे उलट
नये जीवन बोध की फसल
उगाऊँगा !

ए अरुणोदय के रक्तमुख सूर्य,
उषाओ के हेम गौर
स्वप्न शिखर वक्षो मे
मुँह छिपाए न रहो,
चद्रमुखी
सलज्ज सध्या को
बाँहो मे समेटे
अनुराग भरे प्रवाल कुजो में
सोने मत जाओ,—

आज बौना दिवा पुरुष
श्यामा रजनी की
अचेतन गहराइयो मे डूबकर
आत्म विस्मृति मे
खोजाना चाहता है !

ओ महानील के प्रहरी कवि,
प्रभात तारक बन
जगो,
स्वप्न शुभ्र प्रकाश लपटो में
मनोदैन्य को भस्म करो !

ओ तरुण कवि,
कल के सूर्य,
कुहासो के आरोहो से
बाहर निकल

नये विश्वास का
कनक मडल क्षितिज
प्रस्तुत करो,
नयी आस्था की
उर्वर भूमि,—

मै गीतो के
सूप-से पख फैलाकर
प्रीति ध्वज, शोभा प्ररोह
नये प्राण बीज वोऊँगा,—
जिनके मूल
अनवगाहित
चैतन्य की गहराइयो मे
फैलेगे ।

कीर्ति

किसी एक की नही
यह कीर्ति,
समस्त मानवता की है।
पूर्व पश्चिम से मुक्त
जन भू की प्रतिभू
मानवता की।

शस्य बालियो भरी,
आम्र मजरियो सजी—
मुकुट नही कीर्ति,
मन की
व्यक्तित्व की
विभा है।

कोयल कूक रही।
तरु लता वन मे
तरुण रुधिर दौड रहा।
किरणो से अनुराग
सुनहला पराग
बरस रहा।

सृजन क्राति यह,
रचना रूपातर ।
जीवन शोभा का सिन्धु
हिल्लोलित हो उठा,
दृगों को नयी दृष्टि
कानो को अर्थ बोध के
नये स्वर मिल गए ।

ओ नयी आग,
बाहुओ वक्षो मे
जघनो योनियो मे
नया आनद कूद रहा।
भाल से, भ्रुवो से
कपोलो अधरो से
नया लावण्य निखर रहा ।

ओ शुभ्र शक्तिमत्ते,
रस की नयी चेतने,
व्यक्ति तुम्हे बदी नही बना सकेगा,
ममता कलुषित नही करेगी ।

तुम नयी शक्ति, नयी वेदना,
शील स्वच्छ
नयी सामाजिकता हो ।

रक्त मास की
सुनहली शिखा,
नयी प्राणेच्छा
प्रणयेच्छा बन
नयी एकता, नये बोध के

प्राण बीज बो
नव यौवन आग भरी
भू जीवन अनुराग हरी
मानवता की सौम्य पीढी
उपजाएगी !

नयी मानसिकता की धात्री,
रचना मगल का
स्वर्णिम तोरण बनेगी !

उसी मानवता की है
विश्व कीर्ति,
स्वप्न बालियो भरी
गीत मजरियो गुँथी !

आनंद

इद्रियाँ
सीमाओ मे बँधी
उसका पूर्णत.
अनुभव न कर सकी,

वाणी
कला से सधी
उसे सपूर्ण
अभिव्यक्ति न दे सकी ।

आनद
निखर कर
मेरे हृदय में समा गया !
और
स्वर्ग पद्म तुल्य
अपने समग्र सौन्दर्य में
खिल उठा ।

उपस्थिति

किन अगोचर शिखरो से
ये सुधा स्रोत
हृदय मे झरते है !

तुम्हारी शाति
स्फटिक पर्वत सी,
अडिग,—

तुम्हारा आनद
क्षीर सिन्धु सा तरग हीन,
तुम्हारा सौन्दर्य
सौम्य,
आत्म विस्मृत अवाक् !

कितने प्रकाश पर्वत
अधकार घाटियाँ
पार कर
तुम्हारे निकट आ सका हूँ,
तुम्हारा
अकलुष स्पर्श
पा सका हूँ !

ओ अतश्चेतने,
मानवता
तुम्हारी व्यापक पवित्रता मे
तुम्हारी उपस्थिति की
अविराम सुधा वृष्टि मे
स्नान कर
स्वच्छ
समग्र बन सके !

भाव

चद्रमा
मेरा यज्ञ कुड है,
शोभा के हाथ
हवि अर्पित करते है !

भावना कल्पना
स्वप्न प्रेरणा—
सभी चरु है,
समिधा है,
आहुति है !

ओ आनद की लपटो,
उठो !
ओ प्रीति, ओ प्रकाश,
जगो !

यह सौन्दर्य यज्ञ है,
कला यज्ञ !
शाति ही होत्री है !

आत्मा
इद्रियो की
रुपहली लपटों का
अमृत पान कर रही है !

प्राणो की
स्वत. जलने वाली समित्
जल जल उठती है !
अवचेतन की गुहाएँ
ओषधियो से दीप्त है !

यहसूक्ष्म यज्ञ है,
भाव यज्ञ !
चद्रमा ही
यज्ञ वेदी है !

भावावेश

अकारण
शुभ्र प्रेम ही को
ढाल दिया तुमने
अपनी अमूर्त शोभा,
अमूर्त आनद में !

जब मै
अमूर्तता
निराकारता के
मुख का गुठन
खोलता हूँ—
अपनी नग्न
गुण नग्न
चंपई आभा मे घिरे
तुम्ही मुझे दीखते हो !

ओ रुपहले सौरभ घन,
किस गूढ सुगंध की
घनीभूत ढली है
तुम्हारी देह ?

भावावेश में
जब हृदय
गहरी साँस लेता है,
तुम उड़कर
उसी में समा जाते हो !

ओ मेरे
सहस्रो रोओ मे प्ररोहित
मधुरतम
प्रेम !

अवरोहण

मेरी दुर्बल इद्रियाँ
तुम्हारे आनद का उत्पात
नही सहेगी,—
उन्हे वज्र का बनाओ !

तुम्हारा आनद
समुद्री अतिवात है,
मेरे रोम रोम
दिशाओ मे शुभ्र अट्टहास भर
जग की सीमा से टकराकर
मथित हो उठते है।

मन के समस्त दुर्ग
यम नियम की दीवारे
टूट कर
छिन्न भिन्न हो गई !

तुम्हारे उन्मत्त शक्तिपात की
रति क्रीडा के लिए
मेरी कोमल तृणो की देह
लोट पोट हो
बिछ बिछ जाती है !

तुम कामोन्मत्त
प्रेमोन्मत्त पगो से
उसे रौद कर
जीवन विह्वल
बना देते हो !

सौ सौ अग्नि लपटो में उठ
मेरी चेतना
सजग हो उठती है !
तुम्हारा विद्युत् आनद
भाव प्रलय मचाकर
नयी सृष्टि करता है !

रक्षित

तुम सयुक्त हो ?

फूल के कटोरो का मधु
मधुपायी पी गये
तो, पीने दो उन्हे !

नया वसत
कल नये कटोरो मे
नया आसव ढालेगा !

तुम्हारी देह का लावण्य
यदि इद्रिय तृष्णा
पी गई हो
तो, छक कर पी लेने दो !
आत्मा के दूत
कल, नये क्षितिजो का सौन्दर्य
आँखो के सामने
खोलेगे !

प्रेम
देह मन मे सीमित,—
वियोगानल में
जल रहा हो,
जलने दो,—

वह सोने सा तपकर
नवीन कारुण्य
नवीन मागल्य के
ऐश्वर्यो मे
विकसित होगा !

तुम सयुक्त हो न !

नया देश

ओ अन्धकार के
सुनहले पर्वत,
जिसने अभी
पख मारना नही सीखा,—

जो मानस अतलताओ मे
मैनाक की तरह पैठा है,
जिसमे स्वर्ग की
सैकडो गहराइयाँ
डूब गई है!

मै आज
तुम्हारे ही शिखर से
बोल रहा हूँ!—

तुम, जिससे
स्वप्न देही
शख गौर ज्योत्स्नाएँ—
कनक तन्वी
अहरह काँपती
विद्युल्लताएँ

भावी रभा उर्वशियों सी
फूल बॉह डाले
आनद कलश सटाए
लिपटी है,—

ओ अवचेतन सम्राट्,
यह नया प्रभात
शुभ्र रश्मि मुकुट बन
तुम्हारे ही शिखर पर
उतरा है !

तुम सत्य के
नये इद्रासन हो !

यह नाग लोक का
चितकबरा अधकार
तुम्हारा रथ है !

शची
रक्त पद्म पात्र मे
अनत यौवन मदिरा लिए
खड़ी है !
रभा मेनका
उसीकी परछाई है !

ओ हेम दड नृप
तुम विष्णु के अग्रज हो,—
यह आनद पर्व है,
अपने द्वार खोलो !

इन नील हरी
पेरोज घाटियो मे
फालसई मूँगिया प्रकाश
छन कर आ रहा है।

मयूर
रत्नच्छाय बर्हभार खोले है।
मोनाल डफिए
अँगड़ाई लेकर
पखो का इद्रधनुषी ऐश्वर्य
बरसा रहे है,—

एक नया नगर ही बस गया है।—
ओ मुक्ताभ,
यह नया देश, नया ग्राम
तुम्हारी राजधानी है।
हृदय सिहासन
ग्रहण करो।

रहस्य

इन रजत नील ऊँचाइयो पर
सब मूल्य, सब विचार
खो गए !

यहाँ के शुभ्र रक्ताभ
प्रसारो मे
मन बुद्धि लीन हो गए !

तुम आती भी हो
तो अनाम अरूप गंध बन कर,
स्वर्णिम परागो में लिपटी
आनद सौन्दर्य का
ऐश्वर्य बरसाती हुई !

ओ रचने,
तुम्हारे लिए कहाँ से
ध्वनि, छद लाऊँ ?
कहाँ से शब्द, भाव लाऊँ ?

सब बिचार, सब मूल्य
सब आदर्श लय हो गए !

केवल
शब्दहीन सगीत
तन्मय रस,—
प्रेम, प्रकाश और प्रतीति !

कहाँ पाऊँ रूपक,
अलकरण, कथा ?
ओ कविते,
ये मन के पार के
पवित्र भुवन है,—

यहाँ रूप रस गध स्पर्श से परे
अवाक् ऊँचाइयो
असीम प्रसारो
अतल गहराइयो मे
केवल
अगम शाति है !
अरूप लावण्य,
अकूल आनद,
प्रेम का
अभेद्य रहस्य !

सूर्य मन

लज्जा नम्र
भाव लीन
तुम अरुणोदय की
अर्ध नत
शुभ्र पद्म कली सी
लगती हो ।

ओ मानस सुषमे,
प्रभात से पूर्व का
यह घन कोमल अधकार
तुम्हारा कुतल जाल सा
मुझे घेरे है ।

सामने
प्रकाश के
पर्वत पर पर्वत
खड़े है !—
उनकी ऊँची से ऊँची
चोटियो के फूलो का मधु
मेरा गीत भ्रमर
चख चुका है !

अब,
मन
तुम्हारी शोभा का प्रेमी है,
तुम्हारे चरण कमलों का मधु पीकर
आत्म विस्मृत हो
वह गुजरण करना
भूल जाना चाहता है!

मन का गुजरण
थम जाने पर
तुम्हारा शुभ्र सगीत
स्वत· सूर्यवत्
प्रकाशित हो!

समर्पण

ओ शुभ्रे,
तुम अत प्रकाश मे डूबी
शरद मेघ हो,
तुम्हारे ध्यान मौन
आलोक का स्पर्श पा
आत्म ज्ञान
विस्मृत हो जाता है !

नील
दृष्टि शून्य था,
तुम्हारी आँखो मे समाकर
सर्वदर्शी बन गया !
तुम्हारे कपोलो मे
स्वर्ग शोभा
मुख देखकर
लज्जित हो उठती है !

भ्रमरो की मसृण गुजारो-से
कुतल
तुम्हारा आनन
घेरे रहते है !—

जिनके सुनहले तिमिर वन मे
उषाएँ विलास करती है !

मणि सरोवर
अधरो का अमृत
हृदय को
रस शुद्ध कर देता है !
आनद शिखर
उरोजो को छू
देह ज्ञान छूट जाता है !

तुम्हारी योनि
अतल हरित सिन्धु है,
जिसमे विश्व रस मग्न है !
चपक जघन
प्रेम के शोभा निर्झर है,
जिनसे प्रेरणाओ की तडित्
लिपटी है !

तुम्हारे रश्मि चरण
धरती के अधकार में
प्रकाश सृष्टि करते है—
जिन्हे देख
दृष्टि अपलक
हृदय पद्म
निछावर कर देती है !

एक

नील हरित प्रसारो मे
रगो के धब्बो का
चटकीला प्रभाव है,—

शुभ्र प्रकाश
अर्तहित हो गया !

सूरज, चॉद और मन
प्रकाश के टुकडे है,
वहु रूप !

दर्पण के टुकडो मे
एक ही छबि है,
अपनी छबि !

तुम्हारा प्रकाश
अनेक रूप है,
जिसका सर्व भी दर्पण नही !

यह इद्रधनुष
द्रोपदी का चीर है,
इसका अशेष छोर

शुभ्र किरण थामे है—
जो हाथ नही आती।

शब्द चीटियो की पाँति से
चलते रहेगे—
देश काल अनत है।

तुम सीमा रहित
अस्तित्व मात्र
कौन बिन्दु हो?—
जिसके सामने
चीटी
पर्वत-सी लगती है।

अकूल, कौन सिन्धु हो,
अश्रु कण मे भी
समा जाते हो।

शरद

श्यामल मेघ
रुपहले सूपो की तरह
सिन्धु जल की
निर्मलता बटोरकर
तुम पर उलीचते रहे !

ओ सुनहली आग,
अविराम वृष्टि से
धुलने पर
तुम्हारी दीप्ति बढती गई !

ओ स्वच्छ अगो की
शरद !
तुम्हारे लावण्य का स्पर्श
मुझसे सहा नही जाता !—
ओ स्वप्न गौर शोभे,
ओ शीत त्वक् अग्नि !
धुली अँधियाली के
रेशमी कुतल,—
स्निग्ध नीलिमा नत
चितवन,
रक्त किसलय अधर
नवल मुकुलो के अग !—

ओ गध मुग्ध फूल देह,
दुग्ध स्नात, सौम्य
चद्रमुख
वसत !

तुम्हारा रूप देख
सूरज, नत मुख,
सहम गया !
उसकी रेशमी किरणे
पक्षियो के रोमिल पखो सी
सिमट गई !

लो,
साँझ उषाएँ
प्रसाधन लिए
द्वार पर खडी है !

ताराएँ
पलक मारना
भूल गई है !

ओ सुखद, वरद,
शरद !
आनद
तुम्हारी शुभ्र सुरा पी
अवाक् है !

शंख ध्वनि

शखध्वनि
गूँजती रहती,—
सुनाई नही पड़ती !

त्याग का शुभ्र प्रसार,
ध्यान की मौन गहराई,
समर्पण की
आत्म विस्मृत तन्मयता,
आवेग की
अवचनीय व्यथा
और,
प्रेम की गूढ तृप्ति
शखध्वनि ,—
सुनाई नही पडती,
सुनाई नही पडती !

श्रवण गोचर ?
इद्रिय गोचर ?
ऐसी स्थूल
कैसे हो सकती है
शख ध्वनि ?—

गूँजती रहती,
वह
गूँजती रहती ।

हे वन पर्वत, आकाश सागर,
तुम निबिड हो, उच्च हो,
व्यापक हो, निस्तल हो !
कहाँ है अनत और शाश्वत ?

शखध्वनि
अणु अणु मे व्याप्त
इन सब से परे,
परे, परे,
सुनाई पडती,
निश्चय
सुनाई पडती ।

अनिर्वचनीय

ओ ज्योति वृ त पर खिले
अधकार के
अधखिले फूल,
तुम्ही दृश्य प्रकाश,
तुम्ही जीवन हो !
तुम अदृश्य हो
इसी से दृश्य हो,
ओ दृश्य मे अदृश्य !

तुम्हारा गध स्पर्श पा
मन का सूनापन
गीत भ्रमर बन
गूँज उठा !

वह सुनहले केसर की
लोम हर्ष शय्या पर लेटा
गलित पावक मधु पी
रस मग्न हो गया !

शुभ्र प्रकाश, कृष्ण तम,
कनकाभा, निशीथ,
दोनों तुम्ही हो,—

कब कौन बढ जाता है
ओ प्रकृति, ओ पुरुष,
नही कहा जा सकता !

मैंने तुम्हारे मुख पर
किरणो का जाल
डाल दिया,
हिरणमय पात्र मे बिम्बित
सत्य का मुख
ढँकने के बदले
खुल गया है !

धरती की रोम राजि
हरी है,
सिन्धु का अचल भी !

तुम इनसे भा गहरे
प्रेम के मूक तम हो,
जिसके चरणो पर
ज्ञान लोटता है !

नया प्रेम

ओ नये प्रेम,
तुम्हारे किसलय पुटो मे
जीवन मधु है,
चपई लता वेष्टनो में
ममता की मुक्ति,—

फूलो के सरोवरो मे
भौरो की गूँज भरे
हृदय के स्वप्न,—

और,
सुनहले झरनो मे
नई पीढियो के लिए
यज्ञ की आग है!

तुम पिछली फूलो की बीथियो
आँसू की गलियो से होकर
मत आना,—

क्या कोई भी घर,
कोई भी आँगन

कोई भी पथ
तुम्हारा नहीं ?
जहाँ दीप हो,
छाँह हो,
या धूल भरी थकान हो !
मै सर्वत्र जाऊँगा !

पद

केवल
शोभा की सृष्टि करो,
चाँदनी की अलको मे
स्वप्नो का नीड
बसा कर!

केवल
प्यार की वृद्धि करो,
साँस लेती हिलोरो पर
हेम गौर हस मिथुन
सटा कर!

केवल
आनद अमृत पिलाओ,
वासती आग के दोने
किसलय पुटो का
गधोच्छ्वास पिला कर!

केवल
चपई चैतन्य मे डुबाओ,
तन्मयता के सुनहले अतल मे
स्वप्न हीन सुख मे मग्न कर!

वरदान

सीमा और क्षण को
खोज कर हार गया,
कही नही मिले !

ओ नि सीम
शाश्वत,
मै रिक्त और पूर्ण से
शून्य और सर्व से
मुक्त हो गया !

जहॉ कुछ न था,
कुछ-नही भी न था,
उसके गवाक्ष से
स्वत ही
सुनहली अलको से घिरा
तुम्हारा मुख दिखाई दिया !

तुम्हारी आमत स्मिति से
शोभा, प्रीति और आनद
स्वय उदित हो गए !

अकूल अतल शांति
साँस लेने लगी,
जिसके
उठते-दबते वक्ष पर
स्वर्ग मर्त्य मैत्री के
दो अमृत गौर कलश
शोभित थे !

तुम्हारे सर्वगामी
सहज स्थिर
रश्मि चरणो पर
दिशा काल
ज्ञान शून्य पडे थे !

अव्यक्त

देह मूल्यो के नही
मेरे मनुष्य !
रस वृत पर खिले,
मानस कमल है वे,
पक मूल,—
आत्मा के विकास !

मुक्त-दृष्टि भावो के दल
आनद सतुलित !

कलुष नही छूता उन्हे,
रग गध वे
मधु मरद,
गीत पख
मनुष्य !

छद, शब्द बँधे नही,
भाव, शिल्प सधे नही,
स्वप्न, सोए जगे नही !

सूरज चाँद, साँझ प्रभात ?
अधूरे उपमान !
शोभा ?
बाहरी परिधान !

रूप से परे
अंत स्मित,
गहरे
अंत स्थित,—
मूल्यों के मूल्य हैं
मेरे मनुष्य !

शब्दों के कधो पर
छदो के बधो पर
नही आना चाहता !
वे बहुत बोलते है !

तब ?
ध्यान के यान मे
सूक्ष्म उडान मे,
रूपहीन भावो में
तत्त्व मात्र गात्र धर
खो जाऊँ ?
अर्थ हीन प्रकाश मे
लीन हो जाऊँ !
—तुम परे ही रहोगी !

नही,—
तुम्ही को बुलाऊँ
शब्दो भावो मे
रूपों रंगो में,
स्वप्नो चावो मे.—

तुम्हो आओ
सर्वस्व हो !
मैं न पाऊँगा
निःस्व हो !

सदानीरा

तुम्हे नही दीखी ?
बिना तीरो की नदी,
बिना स्रोत की
सदानीरा !

वेग हीन, गति हीन,
चारो ओर बहती
नही दीखी तुम्हे
जल हीन, तल हीन
सदानीरा ?

आकाश नदी है, समुद्र नदी,
धरती पर्वत भी
नदी हैं !

आकाश नील तल,
समुद्र भँवर,
धरती बुद्‌बुद, पर्वत तरग है,
और वायु
अदृश्य फेन !

तुम नही देख पाए !
छदहीन, शब्दहीन, स्वरहीन, भावहीन,
स्फुरण, उन्मेष, प्रेरणा,—
झरना, लपट,
आँधी !

नीचे, ऊपर सर्वत्र
बहती सदानीरा—
नही दीखी तुम्हे ?

शंख

अतरतम
गोपन क्षण
गूँज उठा,—
नीरव, बुद्धि अगम,
भाव गुह्य ।

वह महासिन्धु का शुभ्र शब्द था,
मौन अतलताओ मे पला
स्फटिक सत्य,—
शख ।
नि स्वर गूढ हर्ष
नवनीत तुल्य
साकार हो उठा !

नाद के सूक्ष्म श्वेत पख
आकाश मे छा गए ।
स्वच्छ शाति के निश्चल पर्वत
मानस जल में नि शब्द सोए थे,—
उनसे अत जागरण के
गीत मुखर
निर्झर फूट पडे ।

जल तल की चट्टानो से टकरा
जिसका रक्त मुख आहत हो उठा
वह क्रुद्ध सर्प
शत फन
फेनिल फूत्कार छोड
नत फन हो गया ।

समुद्र का श्वेत कोलाहल,
अगम शाति मे लीन हो रहा,
मैं अतर्नाद में डूब गया हूँ,
शुभ्र आत्म बोध मे ! —
ओ महत् शख !

झरोखा

हृदय मे डूबो
देह भीतो,
हृदय मे डूबो !
वही अमृत सर है !
तन के ताप
मन के शाप
धुल जाएँगे !
प्रकाश के मन से
बडा है
हृदय सरोवर,
मागल्य सागर !
ज्ञान से महत् है
प्रेम,
क्षमा-आकर !

अपने मे डूबो
लोक भीतो,
वहाँ प्रकाश है !

जगत ?
मात्र निवास है !
जहाँ अधकार ही
अधकार,
यदि
रुद्ध है
हृदय द्वार !

फूल

वह तटस्थ था,
अनासक्त,
तन्मय ।

कब पलकें खुलीं,
शोभा पंखुरियाँ डुलीं,—
रंग निखरे,
कुम्हलाए,—

वह अजान था,
आत्मस्थ,
वृंतस्थ ।

गंध की लपटें
असीम में समा गईं,
स्वर्ण पंख मरंदों से
धरा योनि भर गई ।
वह समाधिस्थ,
मौन,
मग्न ।

धीरे धीरे
दल झरे,
रूप रग बिखरे,—

वह अवाक्,
रिक्त,
नग्न !—

जन्म मरण
ऊपरी क्रम था,—
वह,
मात्र
फूल !

अंतः स्फुरण

सीपी, शख, स्वर,
इनमे अनबिधे मोती है,
अनुसुना नाद,—
स्वर वृ त पर
अनसूँघे फूल !

मोती नही हँसे,
गीत नही गूँजा,
फूल नही खिले !

इद्रिय द्वार मुँदे रहे
सूक्ष्म के प्रति !
विषाद रज भरा रहा
उर मुकुर !

शका,
अनास्था,
अविश्वास,—
मन अपने ही से युक्त नही !

सत्य दूत है
सीपी, शंख,—
स्वप्न मुकुल,
रस वृंत !

अतल
सागर जल के
अरुणोदय !

देन

काल नाल पर खिला
नया मानव,
देश धूलि मे सना नही !

समतल द्वन्द्वो से ऊपर,
दिक् प्रसारों के
रूप रग
गध रज मधु
सौम्य पखड़ियो में सँवारे,
हीरक पद्म !

एक है वह
अत. स्थित
बाह्य सतुलित,
भविष्य मुखी
रश्मि पख
प्राण विहग,—
सूर्य कमल !

वह काल शिखर
देख रहा,
बहिर्देश
बहिर्जीवन
सीमाओ के पार,—
इतिहास पक मुक्त !

अत. प्रबुद्ध
बहि शुद्ध,
पूर्व पश्चिम का नही,
काल की देन
अत्याधुनिक
अर्तविकसित
चैतन्य पुरुष,
ज्योति पद्म !

अंतस्तरण

समाधान करो,
विश्वास न हरो,—
आश्वस्त करो !

ये शेष चरण हैं
अशेष—
अतिम चरण !
निर्वाक् समुद्र मे हूँ !
समुद्र पर चलने लगा हूँ,—
निःसीम समुद्र...
द्र. द्र ..
अथाह
गम्भीर जल,
अकूल, अतल !

उत्ताल तरगें
ग्राहमुखी—
आँधी की रस्सियों सी ऐंठी,
चितकबरे साँपों सी रेंगतीं
फेन स्फीत
सहस्र फन !

आत्मरति के
गुजलक
मरोड़े !

हाय, मन !
नाव नही, नाविक नही,
दिशा नही, कूल नही,—
पाँव—
पाँव पैदल चल रहा हूँ
अतल अकूल जल पर!
नीलोज्वल
हरित कोमल !

ओ जीवनमयी,
मन भीग गया,
प्राण डूब रहे,
अंतःकरण रस मग्न,
हृदय तन्मय !

डूबने न देना,
मुझे डूबने न देना !
समुद्र पर चलने लगा हूँ
निःसीम निस्तल पर !

आश्वस्त करो,
यह तुम्हारा
नया चरण है !
आस्था न हरो !

ओ स्थलचर,
समुद्र में डूबना नही,
चलना है चलना !

सूक्ष्म गति

वह चलती रहती,
थकती नही !—
ठढी, बहती आग,
टटकी वायु !

धुध के भुजगों मे उड़ती
फेनों के पर्वत उगलती,
कूडा कचरा निगलती,
प्राणोज्वल होती
जगत् प्राण !

कर्म गति शक्ति है,
रक्त की, मन की,
मस्तिष्क की,—
वह

धूल के पहाड उठाती,
क्राति मचाती,
आगे बढती
नए क्षितिजों को निखारती !

चेतना गति-सी शुभ्र नही,—
चेतना गति-सी !
जो मूक अतलताओं को छू
    चुपचाप
    स्वर्णिम आरोहों में उभारती
    सँवारती है !

केवल

केवल
प्रकाश और सौन्दर्य
प्रीति के यमल !

चाँदनी में लिपटे तारुण्य-से
अधखिले अंगो के
अधखुले रंगों के
प्रकाश और लावण्य
दो मुकुलों-से
रूप नग्न !

भाई बहिन है
प्रकाश और लावण्य !
छाया अंचल में बँधे
यमज !
मंगल और आनद !

तुम्हारी छाया
जिसमें प्रकाश आनंद
मगल लावण्य लिपटे हैं
स्वप्नों के ऐश्वर्य मे—
उसे न छू पाऊँगा !

तुम्हे देख न सकूँगा
शोभा नग्न !
ओ अगो की अग,
लावण्यों की लावण्य,
तारुण्यो की तारुण्य !

चपक त्वक्,
शुभ्रारुण,
अतल कोमल ! —
मै डूब जाऊँगा
ओ तन्मय अमल कोमल !

भाषा नही
भाव नही,—

ओ अव्यक्त,
तुममे समा न जाऊँ,
खो न जाऊँ !

आगे मौन है,
अतल मौन,
केवल
निश्चल मौन !

शील

ओ आत्म नम्र,
तुम्हे ज्वालाएँ
नही जलाती !

तुम्हारी
छदो की पायले
उतारे दे रहा हूँ,—

तुम स्वप्नों के पग धर
चुपचाप
भाव कोमल
मर्म भूमि पर चल सको !
तुम्हारी चापे
न सुनाई दे,
पदचिह्न
न पड़े !

बाहर
हालाहल सागर है,—
विद्वेष विष दग्ध
सहस्रो उफनाते फन
फूत्कार कर रहे हैं !

उनका दर्प
शील के चरण धर
चुपके
पदनत करो !

तुम्ही हो
वह हालाहल,
फन,
और
फूत्कार,—
अपने से
मत डरो !
तुम्ही हो शील,
त्याग,
प्रेम,—
अनजान
मत बनो !

तुम काँटो के वन में
फूलों के पग धर
निःसशय विचरो,
घृणा का पतझर
वसंत बनने को है !

लोक चेतना के व्यापक
रुपहले क्षितिज खुले है,
तुम रचना मंगल के पंखों पर
उन्मुक्त वायु में

नि:शब्द
विहार करो,—
छदो की पायले
उतार रहा हूँ !

प्रश्न

शशक
मूषक में
कौन महान् है ?—

कला के सामने
गभीर प्रश्न
उपस्थित हुआ ।

साँप
मूषक को
निगल गया,
मयूर
साँप को ।

मयूर की
सतरग
बर्हभार छाया मे
मेढक
कीचड उछालता
टर्राया,—
जैसे को तैसा ।

पर हाय,
खरहा
भले सुंदर हो,
मेंढक
आत्म विज्ञापन
जानता हो,
कलाकार
मूषक ही था !

कुत्ता
बेमन भौंका—
धन्य रे
हितोपदेशकार !

बाह्य बोध

तुम चाहते हो
मै अधखिली ही रहूँ !
खिलने पर
कुम्हला न जाऊँ,
झर न जाऊँ !

—हाय रे दुराशा !
मुझमे
खिलना
कुम्हलाना ही
देख पाए !

द्यावापृथवी

बोध के
सर्वोच्च शिखर से
बोल रहा हूँ·

ओ टिमटिमाते
दीपको,
विश्व क्षितिज पर
महज्ज्योति
महत् सूर्य का उदय
हो रहा है।

मानव जाति का
अत. शिखर,
गहनतम मन.क्षितिज
नव प्रभात से
स्वर्णिम हो उठा।

नया प्रकाश
समस्त मानवता को
गहराइयो
ऊँचाइयो मे
फैल रहा है।

ओ दीप से नीराजन
करनेवालो,
चदन अक्षत के
पूजको,

तुम्हारे मानस मे
शुभ्र कमल खिला हो,—
तुम भावना की नाव से
समुद्र पार जा सकते हो,
तो क्या ?

कल महत् जीवन बोहित
समस्त मानवता को
अकूल के पार ले जा सकेगा !
नव सूर्योदय
प्रत्येक हृदय मे
स्वर्ण कमल खिलाएगा !

आज लोक कल्याण के महत् पर्व मे
विश्व मगल के बृहत् सूर्योदय मे
सहस्रो सूर्यो का प्रकाश
जीवन अधकार की
गहनतम घाटियो को
आलोकित कर रहा है !

अपनी बौनी मान्यताओ के
सुनहले पाश से
मुक्त होओ !

नारद मोह वश
सत्य के महत् दर्पण मे
अपना मुख देखने के बदले
महत् प्रकाश का सौन्दर्य
देखो !

तुम्हारा सत्य
इस महत् सत्य की
एक
लँगड़ी किरण भर है !

ओ पंक ओ पद्म

ओ चपले,
धृष्टे,
प्रेम से डर !
वह
कभी न बुझने वाली
आग है !

तेरे आँचल मे
उडेल दूँ तो
देह मन प्राण
सब
भस्म हो जाएँगे !

ओ वासनाओ के
असख्य कैंचुलो की
नागिन,—
जिसके अधरो का
स्मित दशनामृत
हालाहल,
दश विष बन गया !

ओ देह के अँधियाले में
बुझी किरण,
प्रेम से डर !

जिस मिट्टी के लौदे को
तू गोद में लिए है
वह मिट्टी का ही खिलौना
बना रहे !
देह धूलि, प्राण पक मे
लिपटा !

तू यह गौरव
ढोती रह,—
तूने
दुर्गंध भरी
कीचड की नाली से
अंधे कीड़े को
जन्म दिया !
मृत्यु मलिन मास से
मास लोथ को
सँवारा !

तेरी टाँगो का
तुच्छ कीट
द्वेष घृणा त्रास
भेद भाव ही मे
पले !

उसका हृदय
प्रकाश का नीड
न बनें,
प्रेम का स्वर्ग
न बने !

आ कुलटे
प्रेम की आँच से
अपने कलक को
बचाना !

यह तुच्छ अहताओ को
भस्मीभूत कर
धरती को, विश्व को
मानवता के पावक का
यज्ञ कुड बना देगा !

तेरे चंचल कटाक्ष
कृत्रिम हाव भाव
सब आहुति होकर
जल भुन जाएँगे !

अतृप्ति

क्या देह से ही लिपटोगी ?
ओ मदिरा की
चपई ज्वाल !

गहरे पैठो
और गहरे,—
मेरे अतरतम की
गहराइयो में डूब जाओ !
ओ शोभे,
ओ कामने, श्रद्धे,
प्राणो से ही बँधना
बँधना नही !

मै देखूँ,
लाज मे सनी
तुम्हारी अतलताओं मे
कितनी सुषमाओं की
स्वच्छताएँ—
भावनाओ की
सूक्ष्मताएँ—
अनिमेष स्वप्नो की
अनिर्वचनीयताएँ
छिपी है !

देखूँ
कितने विश्व
कितने मूक लोक
कितने अमेय स्वर्ग,
मादकताओ के पागल प्रकार
सुधाओ के गूढ स्वाद
इस लावण्य पट में
अर्तहित है !

ओ वासती कले,
रूप रग गध से
निखरी
तुम्हारी अनावृत
आभा—
लता सी लचीली
देह तनिमा
बाँहो में भर
सतोष नही होता !

आत्मानुभूति

कैसे कहूँ
अपने अछूते आँचल में
रगो के धब्बे,
मधुपों के
षट्पद चिह्न
न पड़ने दे !—
यह कल की बात है !

आज
अपनी भीनी शोभा
लुटाना चाहे
लुटा !

मीठी कोमल पँखुरियाँ
आँधियाँ दले-मले !
गौर वर्ण
आरक्त हो जाय,
स्वर्णिम मरद
झर जायँ !

नयी पीढ़ियाँ
मधुरस की तीव्रता मे
आत्म विभोर हो जायँ !

तुझे अपनी
गुठित शोभा का मूल्य
पहचानना है !

ओ स्रजयित्री
भावयित्री
कारयित्री प्रतिभे,
तू ही लाई
जातियो
सस्कृतियो
सभ्यताओ को !

असख्य पिपीलिकाओं-से
हाथ पॉव
जो धरातल पर
हिलडुल रहे है—

यह तेरे ही प्राणो का आवेश,
रोम हर्षों की सिहर,
अवश अगो की थर्थर् है !
जीवन
विकास पथ है,
साध्य साधन में
संगति ला !

एकमेव

दिन रात
मेरा ही यज्ञ,
चल रहा है !
बोध की अग्नि मे
लोक कर्म
जल गया है !

अपने बिना
तुम्हे देख ही नही पाता,—
ओ युगो के सपने,
मेरे अपने !

पलके गिराता हूँ
सौ सौ युग
जगते सोते हैं !
चितवन फेरता हूँ
आत्म ज्ञान के
शून्य से टकरा
दृष्टि लौट आती है !
दूसरा कोई मिलता ही नही !

ओ ज्योतिरिगणो,
तुम्हारा सूर्य का भेद
कल्पित, बाहरी भेद है,—
मै तुमसे छोटा,
सूर्य से बडा हूँ !

कहो,
दिशाएँ
उषा के सुनहले पावक में
लिपटी रहें—
दिवस का
रुपहला बालक
जन्म ही न ले !—

कहो,
शुभ्र कुँई-से उरोज खोल
दुग्ध स्नात चाँदनी
चाँद के कटोरे में
सुधा पीती रहे,—

रात
काले कुतलो में
देह लपेटे
गुहा गर्भ मे
सोती रहे !

दिन रात
मेरी भ्रू भगिमाएँ नही
तो क्या है ?

अखंड

मुट्ठी भर भर
मूल्यो के बीज
मैने इधर उधर बखेर दिए है ।
वे चिनगारियो-से
क्षणभर चमक कर
बुझ गए !

मेरी हथेली में
अब कुछ नही ।
रिक्त, अकेला, प्रसार है !
जो अपने आप
फिर फिर
भर जाता है ।

क्यों न फेनो की
सृष्टि करूँ ?
तुम किस मूल्य से
फेन को फेन कहते हो ?

सद्य: को
काल की ऐनक से
क्यो देखते हो ?
छोडो काल को—
कालातीत सद्य: हो
शाश्वत है !
छोडो शाश्वत को
केवल मै ही हूँ !

मै मुँह मे पानी भर
जल फुहार बरसाऊँगा,—
करो तुम मूल्याकन,
गिनो फुहार की बूँदे !

ओ रे सुदर,
ओ रे मोहन,
मैंने ही तुम्हे
फूलो को
स्वप्नों को
इद्रधनुष को दिया !

मै शब्दो की
इकाइयो को रौद कर
सकेतो में
प्रतीकों में बोलूँगा !

उनके पखों को
असीम के पार
फैलाऊँगा !

मै शाश्वत, नि.सीम का
गायक और सृजक रहा
तो
सद्य क्षणिक का भी
जनक हूँ !

मुझे
खडित मत करो !
शाश्वत क्षणिक
दोनो ही
न रह पाएँगे !

समाधान

वेदना की खेती है,
अहता के बीज,—
तीव्र आशका
जिज्ञासा का हल !
मै मनुष्यत्व की फसल
उगाऊँगा !

आनद ही की
गहराई है
यह व्यथा !
जो
प्रीति शिखर बन
मुझे ऊपर खीचती है !
अहता की
अभिन्न सखी;—
उसीका नवनीत सार है
व्यथा !

मेरे हाथ मे
तुमने अपना
अह ही का छोर
दिया है !—

उसीसे
अपने को
तुम्हे—पकडे हूँ !
वह हमारा
मिलन तीर्थ है !

उसीसे
अपने पराए को,
विश्व को,
विश्व पार के सत्य को
समझता हूँ !

तपता हूँ
खँटता हूँ
तो, अपने को पाने !
हँसता हूँ
गाता हूँ तो
अपने को रिझाने !

सब अहताएँ
अहताएँ ही है,–
भक्त की, अभक्त की,
एक ही है !

मै अनेको मे एक
एक में अनेक हूँ !

अपने को,
ध्यान से देखा,
उलटा पलटा
परखा—
तो,
तुम्हो निकले !

रूपांध

सत्य कथा
सत्य से—
प्रेम व्यथा
प्रेम से
अधिक बढ गई !

रूपहले मौर
झर न जायँ,
बने रहे !—
आम्र रस सृष्टि
भले न हो !

सूनी डालो पर
कुहासे घिरे
ओस भरे
आशा बंध

(मानस व्यथा के प्रतीक)
पतझर की सुनहली धूल
आँचल मे समेटे रहे,—
कोयल न बोले !

ततुवाय सा
मै—अपने ही जाल मे
फंसा रहे,—
सूरज चाँद तारे भी
उसी में उतर आएँ !

ओ छिछले जल मे
वशी डालने वाले,
ये कीडे मकोडे
साँप घोघे है !
जिन्हे तुम मछलियाँ
रुपहली कलियाँ समझे हो !

जल अप्सरियाँ
रत्न आभाओं मे लिपटी
अमेय गहराइयो मे
रहती है !

यदि निर्मल
मुक्ताभ अतलताओ से—
सुनहली किरणो सी
जल देवियाँ
कभी बाहर
लहरो पर तिरने आ जायँ,
तो यह नही
सत्य सतही होता है,

और
छिछली तलैया मे डूबकर
तुम
फेन के मोती चुगो !

ओ मेरे रूप के मन,
तेरी भावना की गहराइयाँ
अरूप है !

वाष्प घन

ओ बादलो के देश,
भावनाओ के सूक्ष्म धूम,
चेतना के शुभ्र फेन,
मै आदिवासी हूँ
तुम्हारे प्रदेश का !

न आकार प्रकार,
न रूप रग रेखा,—
कैसे हल चलाऊँ ?
कौन से मूल्य बोऊँ
जो,
मानवता की फसल हँस सके !

तुममें
मुट्ठी भर भर
चाँदी का चूर्ण
सोने की बुकनी
रत्नो की छायाएँ भी मिलाऊँ
तब भी तुम क्षण शोभा
रिक्त भावोच्छास ही रहोगे !

अच्छा हो,
तुम स्वय रिमझिम कर
मिट्टी में मिल जाओ,
धरती को सहलाओ,
नयी हरियाली वन आओ !

ओ सपनो के देश,
जहाँ पख हीन परियो के साथ
मृणाल नाल के हिडोले मे
झूलता प्रेम
सिसका करता है !
ओ आत्म परक गीत,
अति कल्पना के मेघदूत,
तुम्हारे इद्रधनुष की
मै चूनर बनाऊँगा,
घर घर फहराएगी—
तुम्हारी बिजली को
बाँहो मे लिपटाऊँगा,
युवको को सिहराएगी !

आज कुहासे के
सुरमई खँडहरो मे
धूप धुले
रेशमी वाष्पो मे लिपटे
भावो के सुनहरे बिम्ब
टूटे चाँद की पायले बजा,
पीडा की सेज सजा,—

मुक्ताभ फेनो के उपधान पर
थका शीश धर
इद्रधनुषी छटाओ में
लुकछिप,
रूप कला के
स्वप्न देख रहे है !

ओ थोथे छूँछे
भापो के खोखले निर्घोष,
कोरे आत्म विज्ञापन से
दिशाएँ न गुँजा,
गरजने से
बरसना
अधिक काव्यमय है !
हाँ, इसमें
नवीनता न हो !

भू पथ

यह भावना पथ है ।
ओ महारसमयी,
तुम स्वप्नो के चरण धर
इसी छाया बीथी से आती हो !

रजत प्रकाश फैलने लगा,
सुनहली पायले रह रह
बज उठती है ।—

तुम्हारे अतल मर्म की
मोहक गध—
मन तन्मय हो गया,
देह सो गई !

तुम्हारे सूक्ष्म सौन्दर्य के अग
मेरे अगो से लिपट गए,
ओ चद्रकिरणो की तन्वी,
सौरभ से देह मूर्च्छित हो गई ।

मेरी प्रवृत्तियो पर
तुमने विजय पा ली,
इंद्रियो की बहु रूप अग्नि
प्रकाश बन गई ।

तुम हृदय में
ऐसे समा गई
वह तुम्ही में
लीन हो गया !

तुम अंत इद्रियो की
शोभा हो,
कैसी साधारण लगती है
स्थूल इद्रियो की अनुभूति !

ओ इच्छाओ की इच्छे,
तुमने मेरे तन मन प्राणो को
निष्काम सकाम बना दिया !
उनके सवेदन
तुम्हारे महत् आनद में मिल गए !

समाधि मग्न
मै नही रह सकता,
तुम्हे अधकार की
कर्कश गुहाओ में
चलना ही पडेगा,—
वे सब
प्रतीक्षा मे है !

वाचाल

'मोर को
मार्जार-रव क्यो कहते है मा ?'

'वह बिल्ली की तरह बोलता है,
इसलिए !'

'कुत्ते की तरह बोलता
तो बात भी थी !
कैसा भूँकता है कुत्ता,
मुहल्ला गूँज उठता है,—
भौ–भौ !'

'चुप रह !'

'क्यो मा ? . ...
बिल्ली बोलती है
जैसे भीख माँगती हो,
म्याँउ, म्यॉउ !—
चापलूस कही की ! ..
वह कुत्ते की तरह
पूँछ भी तो नही हिलाती'—

'पागल कही का !'

'मोर मुझे फूटी आँख नही भाता,
कौए अच्छे लगते है !'

'बेवकूफ !'

'तुम नही जानती, मा,
कौए कितने मिलनसार
कितने साधारण होते है !
घर घर,
आँगन, मुँडेर पर बैठे
दिन रात रटते है
का, खा, गा
जैसे पाठशाला मे पढते हो !'

'तब तू कौओ की ही
पाँत मे बैठा कर !'

'क्यो नही, मा,
एक ही आँख को उलट पलट
सबको समान दृष्टि से देखते है !—
और फिर,
बहुमत भी तो उन्ही का है, मा !'

'बातूनी !'

सिन्धु मंथन

मथन कर
आत्म मथन,—
ओ सागर,
ओ मानस,
ओ स्वाधीन देश,
अतर मथन कर !

उत्ताल भुजग तरग जगे
शतफन फेन दश
फूत्कार भरे !—
आँधी तूफान उठे
बिजली और वज्र
कडके !

तेरा कालकूट और अमृत
बाहर निकले,—
लक्ष्मी काली
रभा सूर्पनखा,
कौशल्या कैकेयी—

तेरे दुर्गंध भरे मन की
कीचड मे डूबी
तेरी आत्मा
बाहर निकले !

ओ दत हीन बूढे अजगर,
भय सदेह घृणा की
विद्वेष भरी अँधेरी खोह से
बाहर आ,—

ओ आत्म पराजित,
एक बार क्रुद्ध होकर
अपनी आरीदार पूँछ
समस्त बल से
धरती पर मार—
फटकार—

पुरानी केचुल झाड !
नया यौवन
तेरी प्रतीक्षा मे खडा है ।

ओ गुप्त द्रोही,
रीढ के बल रेगना छोड,
ऊर्ध्व मेरु बन !
नई भूमियाँ निखर आई है,—
अपनी झूठी मणि फेककर
मुक्त नील तले
स्वच्छ वायु मे विहार कर !

ओ आलस्य प्रमाद के
निरुद्यमी
राम चाकर काल सर्प,
दर्शन विष दत,
श्रद्धा के गरल,—

परपरा के बिल से निकल,
आत्म वचना छोड !
छो... ड़ !